

**Premchand
Lottery
Chapter 1
DV**

जल्दी से मालदार हो जाने की हवस किसे नहीं होती ? उन दिनों जब लॉटरी के टिकट आये तो मेरे दोस्त विक्रम के पिता और चाचा और अम्माँ और भाई सभी ने क-क टिकट खरीद लिया। कौन जाने किसकी तकदीर जोर करे। किसी के नाम आये, रूपया रहेगा तो घर में ही !

मगर विक्रम को सब्र न हुआ । औरों के नाम रूपये आयेंगे, फिर उसे कौन पूछता है। बहुत होगा, दस-पाँच हजार उसे दे देंगे। इतने रूपयों में उसका क्या होगा ? उसके जिन्दगी में बड़े-बड़े मंसूबे थे। पहले तो उसे संपूर्ण जगत की यात्रा करनी थी, क-क कोने की। पेरू और ब्राजील और टिम्बकटू और होनोलूलू, यह सब उसके प्रोग्राम में थे। वह आँधी की तरह महीने दो महीने उड़कर लौटकर आने वालों में न था। वह क-क स्थान में कई-कई दिन ठहर कर वहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का अध्ययन करना और संसार यात्रा का क बृहद ग्रन्थ लिखना चाहता था । फिर भी उसे क बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाना था, जिसमें दुनिया भर की उत्तम रचनां जमा की जायँ। पुस्तकालय के लि वह दो लाख खर्च करने को तैयार था, और बँगला और कार और फर्नीचर तो

मामूली बातें थीं। पिता या चाचा के नाम रूपये आये तो पाँच हजार से ज्यादा का डोल नहीं, अम्माँ के नाम आये, तो बीस हजार मिल जायँगे, लेकिन भाई साहब के नाम आ गये,

तो उसके हाथ धेला

भी न लगेगा। वह आत्माभिमानि था। घरवालों से भी खैरात या पुरस्कार के रूप में कुछ लेने की बात उसे अपमान-सी लगती थी। कहा करता था- भाई, किसी के सामने हाथ फैलाने से तो किसी गड्ढे में डूब मरना अच्छा है। जब आदमी अपने लिये संसार में कोई स्थान न निकाल सके, तो यहाँ से प्रस्थान कर जाय।

वह खुद बेकार था। घर में लॉटरी-टिकट के लि उसे कौन रूपया देगा, और वह माँगे भी तो कैसे ? उसने बहुत सोच-विचार कर कहा-क्यों न हम तुम साझे में टिकट ले लें।

तजबीज मुझे भी पसन्द आयी। मैं उन दिनों स्कूल मास्टर था। बीस रूपये मिलते थे। उसमें बड़ी मुश्किल से गुजर होती थी। दस रूपये का टिकट खरीदना मेंरे लि हाथी खरीदना था। हाँ क महीना दूध ,घी, जलपान और ऊपर के 'चार हजार महीना कहो। मैं समझता हूँ, दो हजार में तुम बड़े आराम से रह सकते हो।'

विक्रम ने गर्म होकर कहा - मैं शान से रहना चाहता हूँ, भिखारियों की तरह नहीं।

'दो हजार में तुम शान से रह सकते हो।'

'जब तक आप अपने हिस्से में से दो लाख मुझे न देंगे, पुस्तकालय न बन सकेगा।'

'कोई जरूरी नहीं कि तुम्हारा पुस्तकालय शहर में बेजोड़ हो।'

'मैं तो बेजोड़ बनवाऊँगा।'

'इसका तुम्हें अख्तियार है ; लेकिन मेरे रूपये में से तुम्हें कुछ न मिल सकेगा। मेरी जरूरतें देखो। तुम्हारे घर में काफी जायदाद है। तुम्हारे सिर कोई बोझ नहीं, मेरे सिर तो सारी गृहस्थी का बोझ है। दो बहनों का विवाह है, दो भाइयों की शिक्षा है, नया मकान बनवाना है। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि सब रूपयें सीधे बैंक में जमा कर दूँगा। उनके सूद से काम चलाऊँगा। कुछेसी शर्तें लगा दूँगा कि मेरे बाद भी कोई रकम को हाथ न लगा सके।'

विक्रम ने सहानुभूति के भाव से कहा-हाँ, 'सी दशा में तुमसे कुछ माँगना अन्याय है। खैर, मैं

ही तकलीफ उठा लूँगा, लेकिन बैंक के सूद का दर तो बहुत गिर गया है।

हमने कई बैंकों के सूद का दर देखा, स्थायी कोष का भी, सेविंग बैंक का भी। बेशक दर बहुत कम था। दो ढाई रुपये सैकड़ा ब्याज पर जमा करना व्यर्थ है। क्यों न लेन-देन का कारोबार शुरू किया जाय । विक्रम भी यात्रा पर न जायगा। दोनों के साझे में कोठी चलेगी, जब कुछ धन जमा हो जागा तब वह यात्रा करेगा। लेन-देन में सूद भी अच्छा मिलेगा और अपना रोब-दाब भी रहेगा। हाँ जब तक अच्छी जमानत न हो किसी को रूपया न देना चाहि, चाहे आसामी कितना ही मातबर क्यों न हो। और जमानत पर रूपया दे ही क्यों ? जायदाद रेहन लिख कर रूपये देंगे। फिर तो कोई खटका न रहेगा।

वह मंजिल भी तय हुई। अब यह प्रश्न उठा कि टिकट पर किसका नाम रहे। विक्रम ने अपना नाम रखने के

लि बड़ा आग्रह किया। अगर उसका नाम न रहा, तो वह टिकट ही न लेगा। मैंने कोई उपाय न देख कर मंजूर कर लिया और बिना किसी लिखा-पढ़ी के जिससे आगे चल कर मुझे बड़ी परेशानी हुई।

क-क करके इन्तजार के दिन कटने लगे। भोर होते ही हमारी आँखें कैलेंडर पर जाती। मेरा मकान विक्रम के मकान से मिला हुआ था। स्कूल जाने सारे खर्चे तोड़कर पाँच रूपये की गुंजाइश निकल सकती थी। फिर भी डरता था, कहीं से कोई बालाई रकम मिल जाय, तो कुछ हिम्मत बढ़े।

विक्रम ने कहा- कहो तो अपनी अँगूठी बेच डालूँ ? कह दूँगा, ऊँगली से फिसल पड़ी। अँगूठी दस रूपये से कम की न थी। उसमें पूरा टिकट आ सकता था। अगर कुछ खर्च कि

बिना ही टिकट में आधा साझा हुआ जाता है, तो क्या बुरा है ?

सहसा विक्रम फिर बोला- लेकिन भाई, तुम्हें नकद देने पड़ेगे, मैं पाँच रूपये नकद लि बगैर साझा न करूँगा।

अब मुझे औचित्य का ध्यान आ गया। बोला - नहीं, यह बुरी बात है, चोरी खुल जायगी

तो शर्मिन्दा होना पड़ेगा, और तुम्हारे साथ मुझ पर भी डाँट पड़ेगी।

आखिर यह तय हुआ कि पुरानी किताबें किसी सेकंड हैंड किताबों की दुकान पर बेच डाली

जायँ और उस रूपये से टिकट लिया जाय। किताबों से ज्यादा बे जरूरत हमारे पास कोई चीज न

थी। हम दोनों साथ ही मैट्रिक पास हु थे और यह देख कर कि जिन्होंने डिग्रियाँ लीं और आँखें फोड़ी, और घर के रूपये बरबाद कि वह भी जूतियाँ चटका रहे हैं, हमनें वहीं हाल्ट कर दिया। मैं

स्कूल मास्टर हो गया और विक्रम मटरगश्ती करने लगा। हमारी पुरानी पुस्तकें अब दीमकों के सिवा हमारे किसी काम की न थीं। हमसे जितना चाटते बना चाटा, उनका सत निकाल लिया, अब चूहे चाटें या दीमक, हमें परवाह न थी। आज हम दोनों ने उन्हें कूड़ें खाने से निकाला और झाड़-पोंछ कर क बड़ा सा गट्ठर बाँधा। मास्टर था, किसी बुकसेलर की दुकान पर किताब बेचते हु झंपता था । मुझे सभी पहचानते थे इसलि यह खिदमत विक्रम के सुपुर्द हुई और वह आध घंटे में दस रूपये का क नोट लि उछलता-कूदता आ पहुँचा। मैंने उसे इतना प्रसन्न कभी न देखा था। किताबें चालीस रूपये से कम की न थी, पर यह दस रूपये उस वक्त हमें जैसे पड़े हु मिले। अब टिकट में आधा साझा होगा। दस लाख की रकम मिलेगी। पाँच लाख मेरे हिस्से में आयेंगे, पाँच विक्रम के । हम अपने इसी विचार में मगन थे।

मैंने संतोष का भाव दिखा कर कहा- पाँच लाख कुछ कम नहीं होते जी।

विक्रम इतना संतोषी न था । बोला-पाँच लाख क्या, हमारे लि तो इस वक्त तो पाँच सौ भी बहुत हैं, भाई, मगर जिन्दगी का प्रोग्राम बदलना पड़ गया। मेरी यात्रावाली स्कीम तो

टल नहीं सकती। हाँ, पुस्तकालय गायब हो गया।

मैंने आपत्ति की- आखिर यात्रा में तुम दो लाख से ज्यादा तो न खर्च करोगे ?

‘जी नहीं, उसका बजट है साढ़े तीन लाख का । सात वर्ष का प्रोग्राम है। पचास हजार रूपये

साल ही तो हु ?’ के पहले और स्कूल से आने के बाद हम दोनों साथ बैठ कर अपने-अपने मंसूबे बाँधा करते और इस तरह सायँ-सायँ कि कोई सुन न ले। हम अपने टिकट खरीदने का रहस्य छिपा रखना चाहते थे। यह रहस्य जब सत्य का रूप धारण कर लेगा, उस वक्त लोगों को कितना विस्मय होगा ! उस दृश्य नाटकीय आनन्द हम नहीं छोड़ना चाहते थे।

क दिन बातों-बातों में विवाह का जिक्र आ गया। विक्रम ने दार्शनिक गंभीरता से कहा- भाई, शादी-वादी का जंजाल तो मैं नहीं पालना चाहता। व्यर्थ की चिन्ता और हाय-हाय । पत्नी की नाजबरजारी में ही बहुत-से रूपये उड़ जायेंगे।

मैंने इसका विरोध किया- हाँ, यह ठीक तो है, लेकिन जब तक जीवन के सुख-दुख कोई साथी न हो, जीवन का आनन्द ही क्या ? मैं तो विवाहित जीवन से इतना विरक्त नहीं हूँ। हाँ, साथी`सा चाहता हूँ जो अन्त तक साथ रहे और`सा साथी पत्नी के सिवा दूसरा नहीं हो सकता ।

विक्रम जरूरत से ज्यादा तुनुकमिजाजी से बोला- खैर, अपना-अपना दृष्टिकोण है। आपको बीवी मुबारक और कुत्तों की तरह उसके पीछे-पीछे चलना और बच्चों को संसार की सब

से बड़ी विभूति और ईश्वर की सबसे बड़ी दया समझना मुबारक। बन्दा तो आजाद रहेगा, अपने मजे से जहाँ चाहा ग

और जब चाहा उड़ गये और जब चाहा घर आ ग। यह नहीं कि हर वक्त क चौकीदार आपके सिर पर सवार हो। जरा-सी देर हुई घर आने में और फौरन जवाब तलब हुआ, कहाँ थे अब तलक ? आप कहीं बाहर निकले और फौरन सवाल हुआ, कहाँ जाते हो ? और अगर कहीं दुर्भाग्य से पत्नी जी भी साथ हो गयीं तब तो डूब मरने के सिवा आपके लि कोई

मार्ग ही नहीं रह

जाता। भैया, मुझे आपसे जरा भी सहानुभूति नहीं। बच्चे को जरा जुकाम हुआ और आप बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं होमियोपैथिक डॉक्टर के पास। जरा उम्र खिसकी और लौंडे मनाने लगे कि अब आप प्रस्थान करें और वह गुलछर्रे उड़ायें। मौका मिला तो आपको जहर खिला दिया और मशहूर किया आपको कॉलरा हो गया था। मैं इस जंजाल में नहीं पड़ता।

कुन्ती आ गयी। विक्रम की छोटी बहन थी, कोई ग्यारह साल की। छठे में पढती थी और

बराबर फेल होती थी। बड़ी चिबिल्ली, बड़ी शोख। इतने धमाके से द्वार खोले कि हम दोनों चौंक कर उठ खड़े हु।

विक्रम ने बिगड़ कर कहा- तू बड़ी शैतान है कुन्ती, किसने तुझे बुलाया यहाँ।

कुन्ती ने खुफिया पुलिस की तरह कमरे में नजर दौड़ा कर कहा-तुम लोग हर दम यहाँ

किवाड़ बन्द किये क्या बातें किया करते हो ? जब देखो, यहीं बैठे हो। न कहीं घूमने जाते हो, न तमाशा देखने, कोई जादू-मन्तर जगाते होंगे।

विक्रम ने उसकी गर्दन पकड़ कर हिलाते हु कहा-हाँ, क मन्तर जगा रहे हैं, जिसमें तुझे क दूल्हा मिले जो रोज गिनकर पाँच हंटर जमाये सड़ासड़।

कुन्ती उसकी पीठ पर बैठकर बोली- मैं से दूल्हे से ब्याह करूँगी जो मेरे सामने खड़ा पूँछ हिलाता रहेगा। मैं मिठाई के दाने फेंक दूँगी। और वह चाटेगा। जरा भी चीं-चपड़ करेगा तो कान गर्म कर दूँगी। अम्माँ के लॉटरी के रूपयें मिलेंगे तो पचास हजार मुझे दे देंगी। बस, चैन करूँगी। मैं दोनों

वक्त ठाकुर जी से अम्माँ के लि प्रार्थना करती हूँ। अम्माँ कहती हैं, क्वारी लड़कियों की दुआ कभी निष्फल नहीं होती। मेरा मन तो कहता है, अम्माँ को जरूर रूपये मिलेंगे।

मुझे याद आया क बार मैं अपने ननिहाल देहात में गया, तो सूखा पड़ा हुआ था। भादों का महीना आ गया था, मगर पानी की बूंद नहीं। तब लोगों ने चन्दा करके गाँव की सब क्वॉरी लड़कियों की दावत की थी। और उसके तीसरे ही दिन मूसलाधार वर्षा हुई थी। अवश्य ही क्वॉरी की दुआ में असर होता है।

मैंने विक्रम को अर्थपूर्ण आँखों से देखा, विक्रम ने मुझे। आँखों ही में हमने सलाह कर ली और निश्चय भी कर लिया। विक्रम ने कुन्ती से कहा-अच्छा तुझसे क बात कहें, किसी से कहेगी तो नहीं? नहीं, तू तो बड़ी अच्छी लड़की है, किसी से न कहेगी। मैं अबकी तुझे खूब पढ़ाऊँगा और पास करा

दूँगा। बात यह है कि हम दोनों ने भी लॉटरी का टिकट लिया है। हम लोगों के लि भी ईश्वर से प्रार्थना किया कर ; अगर हमें रूपये मिले तो तेरे लि अच्छे-अच्छे गहना बनवा देंगे। सच !

कुन्ती को विश्वास न आया। हमने कसमें खायीं। वह नखरे करने लगी। जब हमने उसे सिर से पाँव तक सोने और हीरे से मढ़ देने की प्रतिज्ञा की, तब हमारे लि दुआ पर राजी हुई।

लेकिन, उसके, पेट में मनो मिठास पच सकती थी वह जरा-सी बातें न पचीं। सीधे अन्दर भागी और क क्षण में सारे घर में खबर फैल गयी। अब जिसे देखि विक्रम को डाँट रहा है, अम्माँ भी, चाची भी, पिता भी, केवल विक्रम की शुभ-कामना से या और किसी बात से, कौन जाने-बैठे-बैठे तुम्हें हिमाकत ही सूझती है। रूपये लेकर पानी में फेंक दि। घर में इतने आदमियों ने तो टिकट लिया ही था, तुम्हें लेने की क्या जरूरत थी ? तुम्हें उसमें कुछ न मिलते ? और तुम भी मास्टर साहब, बिल्कुल घोंघा हो। लड़के को अच्छी बातें क्या सिखाओगे, और उसे चौपट कि डालते हो।’

विक्रम तो लाड़ला बेटा था। उसे और क्या कहते। कहीं रूठ कर क-दो जून खाना न खाये तो आफत ही आ जाय। मुझ पर सारा गुस्सा उतरा। इसकी सोहबत में लड़का बिगड़ जाता है।

‘पर उपदेश कुशल बहुतेरे’ वाली कहावत मेरी आँखों के सामने थीं। मुझे बचपन की क

घटना याद आयी । होली का दिन था। शराब की क बोतल मँगवायी गयी। मेरे मामू साहब उन दिनों आये हु थे। मैंने चुपके से कोठरी में जाकर ग्लास में क घूँट शराब डाली और पी गया। अभी गला जल ही रहा था और आँखें लाल ही थीं कि मामू साहब कोठरी में आ ग और मुझे मानों सेंध में

गिरफ्तार कर लिया और इतना बिगड़े, इतना बिगड़े कि मेरा कलेजा सूख कर छुहारा हो गया ; अम्माँ ने भी डाँटा, पिता जी ने भी डाँटा । मुझे आँसुओं से उनकी क्रोधाग्नि शान्त करनी पड़ी ; और दोपहर ही को मामू साहब नशे में पागल होकर गाने लगे। फिर रोये, फिर अम्माँ को गालियाँ दीं, दादा को मना करने पर भी मारने दौड़े और आखिर में कै करके जमीन पर बेसुध पड़े नजर आ।

विक्रम के पिता बड़े ठाकुर साहब, और चाचा छोटे ठाकुर साहब दोनों जड़वादी थे, पूजा-पाठ की हँसी उड़ाने वाले, पूरे नास्तिक। मगर अब दोनों बड़े निष्ठावान और ईश्वर भक्त हो ग थे। बड़े ठाकुर साहब तो प्रातःकाल गंगा स्नान करने जाते और मन्दिरों में चक्कर लगाते हु दोपहर को सारी देह में चंदन लपेटे घर लौटते। छोटे ठाकुर घर में गर्म पानी से स्नान करते गठिया से ग्रस्त होने पर भी राम नाम लिखना शुरू कर देते। धूप निकल आने पर पार्क की ओर निकल जाते और

चींटियों को आटा खिलाते। शाम होते ही दोनों भाई अपने ठाकुर द्वारे में जा बैठते और आधी रात तक भागवत की कथा तन्मय होकर सुनते। विक्रम के बड़े भाई प्रकाश को साधु-महात्माओं पर अधिक विश्वास था। वह मठों और साधुओं के अखाड़ों और कुटियों की खाक छानते, और माताजी को भोर से आधी रात स्नान, पूजा और व्रत के सिवा दूसरा काम ही नहीं था । उस उम्र में भी उन्हें सिंगार का शौक था ;पर आजकल पूरी तपस्विनी बनी

हुई थीं। लोग नाहक लालसा को बुरा कहते हैं। मैं तो समझता हूँ, हममें जो यह भक्ति और निष्ठा और धर्म-प्रेम है, वह केवल हमारी लालसा, हमारी हवस के कारण । हमारा धर्म हमारे स्वार्थ के बल पर टिका हुआ है। हवस मनुष्य के मन और बुद्धि का इतना संस्कार कर सकती है, यह मेरे लि बिल्कुल नया अनुभव था। हम दोनों ज्योतिषियों और पंडितों से प्रश्न करके अपने को दुखी कर लिया करते थे।

ज्यों-ज्यों लॉटरी का दिन समीप आता जाता था, हमारे चित्त की शान्ति उड़ती जाती थी। हमेशा उसी ओर मन टँगा रहता। मुझे आप ही आप अकारण संदेह होने लगा कि कहीं विक्रम मुझे हिस्सा देने से इनकार कर दे तो मैं क्या करूँगा। साफ इनकार कर जाय कि तुमने टिकट में साझा किया ही नहीं। न कोई तहरीर है, न कोई दूसरा सबूत । सब कुछ विक्रम की नीयत पर है। उसकी नीयत जरा भी डाँवाडोल हुई और मेरा काम तमाम। कहीं फरियाद नहीं कर सकता, मुँह तक नहीं खोल सकता अब अगर कुछ कहूँ भी तो कोई लाभ नहीं। अगर उसकी नीयत में फितूर आ गया है तब तो वह अभी से इनकार कर देगा। अगर नहीं आया है, तो इस संदेह से उसे मर्मन्तक वेदना होगी।

आदमी`सा तो नहीं है ; मगर भई, दौलत पाकर ईमान सलामत रखना कठिन है। अभी तो रूपये नहीं

मिले । इस वक्त ईमानदार बनने में क्या खर्च होता है ? परीक्षा का समय तो तब आयेगा, जब दस लाख रूपये हाथ में होंगे। मैंने अपने अन्तःकरण को टटोला-अगर टिकट मेरे नाम होता और मुझे दस लाख मिल जाते, तो क्या मैं आधे रूपये बिना कान-पूँछ हिलाये विक्रम के हवाले कर देता। कहता-तुमने पाँच रूपये उधार दि थे। उसके दस ले लो, सौ ले लो, और क्या करोगे। मगर नहीं, मुझसे इतनी बद-दियानती न होती।

दूसरे दिन हम दोनों अखबार देख रहे थे कि सहसा विक्रम ने कहा-कहीं हमारा टिकट निकल आ, तो मुझे अफसोस होगा कि नाहक तुमसे साझा किया।

वह सरल भाव से मुस्कराया, मगर यह थी उसकी आत्मा की झलक, जिसे वह विनोद की आड़ में छिपाना चाहता था।

मैंने चौंक कर कहा-सच !लेकिन इसी तरह मुझे भी तो अफसोस हो सकता है ?

‘लेकिन टिकट तो मेरे नाम का है ?’

‘इससे क्या ?’

‘अच्छा मान लो, मैं तुम्हारे साझे से इनकार कर जाऊँ ?’

मेरा खून सर्द हो गया । आँखों के सामने अँधेरा छा गया ।

‘मैं तुम्हें बदनीयत नहीं समझता ।’

‘मगर है बहुत संभव । पाँच लाख । सोचो !दिमाग चकरा जाता है !’

‘तो भई, अभी कुशल है, लिखा-पढ़ी कर लो। यह संशय रहे ही क्यों ?’

विक्रम ने हँसकर कहा- तुम बड़े शक्की हो यार ! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। भला, सा कहीं हो सकता है। पाँच लाख क्या, पाँच करोड़ हों, तब भी ईश्वर चाहेगा, तो नीयत में खलल न आने दूँगा।

किन्तु मुझे उसके इन आश्वासनों पर बिलकुल विश्वास न आया। मन में क संशय पैठ गया।

मैंने कहा-यह तो मैं जानता हूँ कि तुम्हारी नीयत कभी विचलित नहीं हो सकती, लेकिन लिखा-पढ़ी कर लेने में क्या हरज है ?

‘फजूल !’

‘फजूल ही सही।’

तो पक्के कागज पर लिखना पड़ेगा। दस लाख की कोर्ट की फीस ही साढ़े साथ हजार हो जायगी। किस भ्रम में हैं आप ?’

मैंने सोचा, बला से सादी लिखा-पढ़ी के बल पर कोई कानूनी कारवाई न कर सकूँगा। पर इन्हें लज्जित करने का, इन्हें जलील करने का, इन्हें सबके सामने बेईमान सिद्ध करने का अवसर तो मेरे हाथ आगा। और दुनिया में बदनामी का भय न हो तो आदमी न जाने क्या

करे। अपमान का भय कानून के भय से किसी तरह कम क्रियाशील नहीं होता; बोला- मुझे सादे कागज पर ही विश्वास आ जायेगा।

विक्रम ने लापरवाही से कहा- जिस कागज का कोई कानूनी महत्व नहीं उसे लिख कर क्यों

समय नष्ट करें ?

मुझे निश्चय हो गया कि विक्रम की नीयत में अभी से फितूर आ गया। नहीं तो सादा कागज लिखने में क्या बाधा हो सकती है। बिगड़ कर कहा-तुम्हारी नीयत को अभी से खराब हो गयी है।

उसने निर्लज्जता से कहा- तो क्या तुम यह साबित करना चाहते हो कि'सी दशा में तुम्हारी नीयत न बदलती ?

'मेरी नीयत इतनी कमजोर नहीं है।'

'रहने भी दो। बड़ी नीयत वाले ! अच्छे-अच्छों को देखा है।'

'तुम्हें इसी वक्त लेख-बद्ध होना पड़ेगा। तुम्हारे ऊपर विश्वास नहीं रहा।'

'अगर तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है, तो मैं भी नहीं लिखता।'

'तो क्या तुम समझते हो मेरे रूप हजम कर जाओगे ?'

'किसके रूपये और कैसे रूपये ?'

'मैं कहे देता हूँ विक्रम, हमारी दोस्ती का ही अन्त हो जायगा, बल्कि इससे कहीं भयंकर परिणाम होगा।'

हिंसा की क ज्वाला-सी मेरे अन्दर दहक उठी।

सहसा दीवान खाने में झड़प की आवाज सुनकर मेरा ध्यान उधर चला गया। जहाँ दोनों ठाकुर बैठा करते थे। उनमें'सी मैत्री थी जो आदर्श भाइयों में ही हो सकती है। राम और लक्ष्मण में भी इतनी ही रही होगी। झड़प की तो बात ही क्या, मैंने उनमें कभी विवाद होते भी न सुना था। बड़े ठाकुर जो कह दें, वह छोटे ठाकुर के लि कानून था और छोटे ठाकुर की इच्छा देखकर ही बड़े ठाकुर कोई बात कहते थे। हम दोनों को आश्चर्य हुआ । दीवानखाने के द्वार पर जाकर खड़े हो ग।

दोनों भाई अपनी-अपनी कुर्सियों से उठ खड़े हो गये, क-क कदम आगे बढ़ आये, आँखें लाल, मुख विकृत, तयोरियाँ चढी हुई, मुट्ठियाँ बँधी हुई। मालूम होता था, बस हाथापाई हुआ ही चाहती है।

छोटे ठाकुर ने विक्रम को देखकर पीछे हटते हुए कहा - सम्मिलित परिवार में जो कुछ भी और कहीं से भी और किसी के नाम भी आ, वह सबका नाम भी आ, वह सबका है, बराबर।

बड़े ठाकुर ने विक्रम को देखकर कदम और आगे बढ़ाया- हरगिज नहीं ; अगर मैं कोई जुर्म करूँ तो मैं पकड़ा जाऊँगा, सम्मिलित परिवार नहीं। मुझे सजा मिलेगी, सम्मिलित परिवार को नहीं। यह वैयक्तिक प्रश्न है।

इसका फैसला अदालत से होगा।

शौक से अदालत जाइ, अगर मेरे लड़के, मेरी बीबी या मेरे नाम लॉटरी मिली तो आपका उससे कोई

सम्बन्ध न होगा, उसी तरह जैसे आपके नाम लॉटरी निकले तो मुझसे, मेरी बीबी से या मेरे लड़के से, उससे कोई सम्बन्ध न होगा।

अगर मैं जानता आपकी`सी नीयत है, तो मैं भी बीबी -बच्चों के नाम टिकट ले सकता था।'

'यह आपकी गलती है।'

इसीलि कि मुझे विश्वास था, आप भाई हैं।'

'यह जुआ है, आपको समझ लेना चाहि था । जु की हार-जीत का खानदान पर कोई असर नहीं पड़ सकता। अगर आप कल को दस पाँच हजार रेस में हार आये तो खानदान उसका जिम्मेदार न होगा।'

‘मगर भाई का हक दबाकर आप सुखी नहीं रह सकते।’

‘आप न ब्रम्हा हैं न कोई महात्मा।’

विक्रम की माता ने सुना कि दोनों भाइयों में ठनी हुई है और मल्ल-युद्ध हुआ चाहता है, तो दौड़ी हुई बाहर आयी और दोनों को समझाने लगी।

छोटे ठाकुर ने बिगड़कर कहा- आप मुझे क्या समझाती हैं, उन्हें समझाइ, जो चार-चार टिकट लि बैठे हैं। मेरे पास क्या है, क टिकट। उसका क्या भरोसा। मेरी अपेक्षा जिन्हें रूपये मिलने का चौगुना चांस है, उनकी नीयत बिगड़ जाय, तो लज्जा और दुख की बात है।

ठकुराइन ने देवर को दिलासा देते हु कहा- अच्छा, मेरे रूपये में से आधे तुम्हारे। अब तो खुश हो ?

बड़े ठाकुर ने बीवी की जबान पकड़ी- क्यों आधे लेंगे ? मैं क धेला भी न दूँगा। हम मुरौवत और सहृदयता से काम लें, फिर भी इन्हें पाँचवें हिस्से से ज्यादा किसी तरह न मिलेगा। आधे का दावा किस नियम से हो सकता है ? न बौद्धिक, न धार्मिक, न नैतिक।

छोटे ठाकुर ने खिसियाकर कहा- सारी दुनिया का कानून आप ही तो जानते हैं।

‘जानते ही हैं, तीस साल तक वकालत नहीं की है।’

‘यह वकालत निकल जायगी, जब सामने कलकत्ते का बैरिस्टर खड़ा कर दूँगा।’

‘बैरिस्टर की`सी-तैसी, चाहे वह कलकत्ते का हो या लंदन का !’

‘मैं आधा लूँगा, उसी तरह जैसे घर की जायदाद में मेरा आधा है।’

इतने में विक्रम के बड़े भाई साहब सिर और हाथ में पट्टी बाँधे, लगड़ते हु कपड़ो पर ताजे खून के दाग लगा, प्रसन्न मुख आकर क आराम कुर्सी पर गिर पड़े। बड़े ठाकुर ने घबरा कर पूछा-यह तुम्हारी क्या हालत है जी ! ऐं यह चोट कैसे लगी ? किसी से मार-पीट तो नहीं हो गयी ?

प्रकाश ने कुरसी पर लेट कर क बार कराहा, फिर मुस्करा कर बोले - जी, कोई बात नहीं, `सी कुछ बहुत चोट नहीं लगी।

‘कैसे कहते हो चोट नहीं लगी। साराहाथ और सिर सूज गया है। कपड़े खून से तर ।

यह मुआमला क्या है ? कोई मोटर-दुर्घटना तो नहीं हो गयी ?'

'बहुत मामूली चोट है साहब, दो-चार दिन में अच्छी हो जायगी। घबराने की कोई बात नहीं।,

प्रकाश के मुख पर आशापूर्ण शान्त मुस्कान थी। क्रोध, लज्जा या प्रतिशोध की भावना का नाम भी न था।

बड़े ठाकुर ने और व्यग्र होकर कहा- लेकिन हुआ क्या, यह क्यों नहीं बतलाते ? किसी से मार-पीट हुई हो तो थाने में रपट करवा दूँ।

प्रकाश ने हलके मन से कहा- मार-पीट किसी से नहीं हुई साहब। बात यह है कि मैं जरा झक्कड़ बाबा के पास चला गया था। आप तो जानते हैं, वह आदमियों की सूरत से भागते हैं और पत्थर लेकर मारने दौड़ते हैं। जो डर कर भागा वह गया। जो पत्थर की चोटें भी खाकर उनके पीछे लगा रहा वह पारस हो गया। वह यही परीक्षा लेते हैं। आज मैं भी वहाँ पहुँचा तो क पचास आदमी जमा थे, कोई मिठाई लि कोई बहुमूल्य भेंट लि, कोई कपड़ों के थान लि। झक्कड़ बाबा ध्यानावस्था में बैठे थे। काक आँखें खोलीं और यह जनसमूह देखा तो कई पत्थर चुनकर उनके पीछे दौड़े। फिर क्या था भगदड़ मच गयी। लोग गिरते-पड़ते भागे। हुर्र हो ग। क भी न टिका।

अकेला मैं घंटाघर की तरह डटा रहा। बस उन्होंने पत्थर चला ही तो दिया ! पहला निशाना सिर में लगा। उनका निशाना अचूक पड़ता है। खोपड़ी भन्ना गयी । खून की धारा बह चली । लेकिन मैं हिला नहीं। फिर बाबा जी ने दूसरा पत्थर फेंका। वह हाथ में लगा। मैं गिर पड़ा और बेहोश हो गया। जब होश आया, तो वहाँ सन्नाटा था। बाबा जी भी गायब हो ग। अन्तर्धान हो जाया करते हैं। किसे पुकारूँ, किससे सवारी लाने को कहूँ ? मारे दर्द के हाथ कटा पड़ता था और सिर से अभी तक खून जारी था। किसी तरह उठा और सीधा

डॉक्टर के पास गया उन्होंने देखकर कहा - हड्डी टूट गयी है, और पट्टी बाँध दी। गर्म पानी से सेंकने को कहा है। शाम को फिर आवेंगे। मगर चोट लगी तो लगी, अब लॉटरी मेरे नाम आयी धरी है। यह निश्चय है। ऐसा कभी हुआ नहीं कि झक्कड़ बाबा की मार खाकर कोई नामुराद रह गया हो। मैं तो सबसे पहले बाबा की कुटी बनवा दूँगा।

बड़े ठाकुर साहब के मुख पर संतोष की झलक दिखाई दी। फौरन पलंग बिछ गया। प्रकाश उस पर लेटे। ठकुराइन पंखा झलने लगीं, उनका मुख भी प्रसन्न था। इतनी चोट खाकर दस लाख पा जाना कोई बुरा सौदा न था।

छोटे ठाकुर साहब के पेट में चूहे दौड़ रहे थे। ज्यों ही बड़े ठाकुर भोजन करने गये, और

ठकुराइन भी प्रकाश के लि भोजन का प्रबन्ध करने गयी, त्यों ही छोटे ठाकुर ने प्रकाश से पूछा- क्या बहुत जोर से पत्थर मारते हैं ? जोर से क्या मारते होंगे ?

प्रकाश ने उनका आशय समझकर कहा- अरे साहब पत्थर नहीं मारते, बम गोले मारते हैं। देव-सा डील-ड़ौल है, और बलवान इतने है कि क घूँसे में शेर का काम तमाम करे देते हैं। ऐसा-वैसा

आदमी हो तो क पत्थर में टें हो जाय। कितने ही तो मर गये, मगर आज तक झक्कड़ बाबा पर मुकदमा नहीं चला। और दो-चार पत्थर मार कर ही नहीं रह जाते, जब तक आप गिर न पड़ें और बेहोश न हो जायेंगे वह मारते जायेंगे, मगर रहस्य यही है कि आप जितनी ज्यादा चोट खायेंगे, उतने ही अपने उद्देश्य के निकट पहुँचेंगे।

प्रकाश ने सा रौं खड़ा कर देने वाल चित्र खींचा कि छोटे ठाकुर साहब थर्सा उठे। पत्थर खाने की हिम्मत न पड़ी।

आखिर भाग्य के निपटारे का दिन आया-जुलाई की बीसवीं तारीख। कत्ल की रात। हम प्रातःकाल उठे तो जैसे क नशा चढ़ा हुआ था, आशा और भय के द्वन्द्व का। दोनों ठाकुरों ने घड़ी

रात रहे गंगा स्नान किया था और मन्दिर में बैठे पूजन कर रहे थे। आज मेरे मन में श्रद्धा जागी। मन्दिर जाकर मन ही मन ठाकुर जी की स्तुति करने लगा-अनाथों के नाथ, तुम्हारी

कृपा-दृष्टि क्या हमारे ऊपर न होगी ? तुम्हें क्या मालूम नहीं, हमने कितनी मुश्किल से टिकट खरीदे हैं। तुम अन्तर्यामी हो। संसार में हमसे ज्यादा तुम्हारी दया कौन 'डिजर्व' करता है ? विक्रम सूट-बूट पहने मन्दिर के द्वार पर आया, मुझे इशारे से बुला कर इतना कहा- 'मैं डाकखाने जाता हूँ' और हवा हो गया। जरा देर में प्रकाश मिठाई के थाल लि हु घर में से निकले और मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर कंगालों को बाँटने लगे ; जिनकी क भीड़ जमा हो गई थी। और दोनों ठाकुर भगवान के

चरणों में लव लगाये बैठे थे, सिर झुकाये, आँखें बन्द, अनुराग में डूबे हु।

बड़े ठाकुर ने सिर उठाकर पुजारी की ओर देखा और बोले-भगवान बड़े भक्त-वत्सल हैं, क्यों पुजारी जी ?

पुजारी जी ने समर्थन किया- हाँ सरकार, भक्तों की रक्षा के लि तो भगवान क्षीर सागर से दौड़े और गज को ग्राह के मुँह से बचाया।

क क्षण के बाद छोटे ठाकुर ने सिर उठाया और पुजारी जी बोले- क्यों पुजारी जी, भगवान तो सर्वशक्तिमान है, अन्तर्यामी सबके दिल का हाल जानते हैं ?

पुजारी जी ने समर्थन किया- हाँ सरकार, अन्तर्यामी न होते तो सबके मन की बात कैसे जान जाते ? शबरी का प्रेम देख कर स्वयं उसकी मनोकामना पूरी की ।

पूजन समाप्त हुआ। आरती हुई दोनों भाइयों ने आज ऊँचे स्वर से आरती गाई और बड़े ठाकुर ने दो रूपये थाल में डाले। छोटे ठाकुर ने चार रूपये डाले। बड़े ठाकुर ने क बार कोप-दृष्टि से देखा और मुँह फेर लिया।

सहसा बड़े ठाकुर ने पुजारी जी से पूछा-तुम्हारा मन क्या कहता है पुजारी जी ?

पुजारी बोला -सरकार की फते है।

छोटे ठाकुर ने पूछा- और मेरी ?

पुजारी ने उसी मुस्तैदी से कहा- अपकी भी फते है !

बड़े ठाकुर श्रद्धा में डूबे भजन गाते हु मन्दिर से निकले--

'प्रभु जी, मैं तो आया सरन तिहारे, हाँ, प्रभु जी

क मिनट में छोटे ठाकुर साहब मन्दिर से गाते हु निकले--

'अब पत राखो मोरे दया निधि, तोरी गति लखि न परे...'

मैं भी पीछे निकला और मिठाई बाँटने में प्रकाश बाबू की मदद करनी चाही, पर उन्होंने थाल हटा कर कहा-आप रहने दीजि, मैं अभी बाँटे डालता हूँ। अब रह ही कितनी गयी है ?

मैं खिसिया कर डाकखाने की तरफ चला कि विक्रम मुस्कराता हुआ साइकिल पर आ पहुँचा। उसे देखते ही सभी जैसे पागल हो ग। दोनों ठाकुर सामने खड़े थे। दोनों बाज की तरह झपटे। प्रकाश की थाल में थोड़ी सी मिठाई बच रही थी। उसने थाल जमीन पर पटका और दौड़ा। और मैंने तो उस उन्माद में विक्रम को गोद में उठा लिया , मगर कोई उससे कुछ पूछता ही नहीं, सभी जय- जयकार की हाँक लगा रहे हैं।

बड़े ठाकुर ने आकाश की ओर देखा- बोलो, राजा रामचन्द्र की जय !

छोटे ठाकुर ने छल्लाँग मारी - बोलो, हनुमान जी की जय !

प्रकाश तालियाँ बजाता हुआ चीखा- दुहाई झक्कड़ बाबा की !

विक्रम ने और जोर से कहकहा मारा ; फिर अलग खड़ा होकर बोला- जिसका नाम आया है,

उससे क लाख लूँगा। बोलो, है मंजूर ?

बड़े ठाकुर ने उसका हाथ पकड़ा - पहले बता तो।

'ना ! यों नहीं बताता।'

छोटे ठाकुर बिगड़े- महज बताने के लि क लाख ? शाबाश !

प्रकाश ने भी त्योंरी चढ़ायी- क्या डाकखाना हमनें देखा नहीं है ?

'अच्छा तो अपना नाम सुनने के लि तैयार हो जाओ।'

सभी फौजी अटेंशन की दशा में निश्चल खड़े हो ग।

‘होश-हवास ठीक रखना !’

‘सभी पूर्ण सचेत हो गये।’

‘अच्छा, तो सुनि कान खोल कर, इस शहर का सफाया है। इस शहर का ही नहीं, सम्पूर्ण

भारत का सफाया है। अमेरिका के क हब्शी का नाम आ गया ।

बड़े ठाकुर झल्लाये - झूठ, झूठ बिलकुल झूठ।

छोटे ठाकुर ने पैंतरा बदला- कभी नहीं। तीन महीने की तपस्या यों ही रही वाह !

प्रकाश ने छाती ठोंक कर कहा- यहाँ सिर फुड़वाये और हाथ तुड़वाये बैठे है, दिल्ली है।

इतने में और पचीसों आदमी उधर से रोनी सूरत लि निकले। वे बेचारे भी डाकखाने से अपनी किस्मत को रोते चल आ रहे थे। मार ले गया अमेरिका का हब्शी ! अभाग !

पिशाच ! दुष्ट !

अब कैसे किसी को विश्वास न आता। बड़े ठाकुर झल्लाये हु मन्दिर में गये और पुजारी को डिसमिस कर दिया-इसीलि तुम्हें इतने दिनों से पाल रखा है ! हराम का माल खाते हो और चैन करते हो !

छोटे ठाकुर साहब की तो जैसे कमर टूट गयी । दो-तीन बार सिर पीटा और वहीं बैठ गये। मगर प्रकाश के क्रोध का पारावार न था। उसने अपना मोटा सोंटा लिया और झक्कड़ बाबा की मरम्मत करने चला।

माताजी ने केवल इतना कहा- सबों ने बेईमानी की है। मैं कभी मानने को नहीं। हमारे देवता क्या करें। किसी के हाथ से थोड़े छीन लायेंगे।

रात को किसी ने खाना नहीं खाया मैं भी उदास बैठा हुआ था कि विक्रम आकर बोला- चलों, होटल से कुछ खा आयें। घर में तो चूल्हा नहीं जला।

मैंने पूछा - तुम डाकखाने से आये, तो बहुत प्रसन्न क्यों थे ?

उसने कहा- जब मैंने डाकखाने के सामने हजारों की भीड़ देखी तो मुझे अपने लोगों के गधे पन पर हँसी आयी। क शहर में जब इतने आदमी हैं तो सारे हिन्दुस्तान में इसके हजार गुने से कम न होंगे और दुनिया में तो लाख गुने से भी ज्यादा हो जायेंगे। और मैंने आशा का क पर्वत-सा खड़ा कर रखा था, वह जैसे कबारगी इतना छोटा हुआ कि राई बन गया, और मुझे हँसी आयी। जैसे कोई दानी छँटाक भर अन्न हाथ में लेकर क लाख आदमियों को नेवता दे बैठे - और यहाँ हमारे घर का क-क आदमी समझ रहा है कि...

मैं भी हँसा- हाँ, बात तो यथार्थ में वही है, और हम दोनों लिखा-पढ़ी के लि लड़े मरते थे। मगर सच बताना तुम्हारी नीयत खराब हुई थी कि नहीं ?

विक्रम मुस्करा कर बोला- अब क्या करोगे पूछ कर। परदा ढका रहने दो।